Vol. 2, No.2 (April 2013) P. 1-5
Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

निम्बार्क सम्प्रदाय का संगीतमय रास

गौरव शुक्ल (शोध छात्र)
संगीत शास्त्र विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221 005
Email–gauravshukl.simple@gmail.com

संगीत का आधारभूत तत्व 'नाद' है, जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त और प्राणभूत तत्व के साथ सम्बद्ध है । संगीत का अन्य मूलभूत तत्व लय, जो सृष्टि की गतिमानता का प्रतीक है । कला के रूप में संगीत अपने सर्वोत्कृष्ट स्तर पर पहुँचकर रसात्मकता के जिस तत्व को प्रतिफलित करता है, वही नैतिक उत्कर्ष का साधन बनकर आत्मा–परमात्मा की एकाग्रता का सोपान बन जाता है । इसको आध्यात्म–वादियों ने ब्रह्म मानकर 'रसो वै सः'[1] कहा है ।

इस प्रकार 'रस' ही वह तत्व है जिसकी प्राप्ति के लिए आध्यात्मवादियों ने अनाहत नाद को तथा संगीतविदों ने आहत नाद को कला के रूप में अपनी साधना का माध्यम स्वीकार किया, दोनों ही माध्यम साधना को अंगीकृत करके मानव हृदय का परिष्कार कर उसे मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर करते हैं ।

शंकराचार्य जी के अनुसार, ''कला वह है जो मनुष्य को सत्य की ओर अग्रसर करती है और वही सत्य ब्रह्म है।''[2] इस प्रकार कला लौकिक धरातल पर आकर्षण, आनन्द व मनोरंजन का साधन बनकर अपने अंतिम चरण में नैतिक उत्थान का साधन बन जाती है और साधक अथवा आस्वादक दोनों के ही मनोभावों का परिष्कार करते हुए शनैः शनैः समस्त समाज, राष्ट्र और अंततः समस्त प्राणियों के लिए हितकर सिद्ध होती है ।

संगीत न केवल साधक को अपितु आस्वादक के रूप में श्रोता या सहृदय को तल्लीनता की स्थिति में ले जाकर उसका नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान करने में सक्षम है । संगीत में चित्तवृत्तियों को शांत और एकाग्र करने का महान गुण है, इसलिए भक्ति और संगीत को ईश स्तुति के संदर्भ में एक दूसरे का पूरक माना गया है । पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान शंकर की डमरू–ताण्डव नृत्य के साथ, सरस्वती की वीणा के साथ, कृष्ण की बंशी के साथ और नारद की तन्त्री वाद्य वीणा के साथ सम्बद्धता रही है । इस प्रकार सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भक्ति, संगीत तथा धर्म सदैव एक–दूसरे के साथ सम्बद्ध रहे हैं । संगीत के ऐतिहासिक अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल से ही यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों में संगीत के मूलाधार सामवेद की ऋचाओं की गायन प्रथा प्रचलित थी । इस सामगान से प्रवाहित होती हुई परिष्कृत संगीत की धारा कालान्तर में ब्रज के देवालयों में प्रयुक्त भक्ति संगीत का आधार बनी ।

ब्रज के भक्तिमय आध्यात्मिक आकर्षण से प्रभावित होकर सभी वैष्णवाचार्यों ने इसे ही अपनी तपस्थली चुना । निम्बार्क सम्प्रदाय, रामानुज सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय तथा विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में निम्बार्क

सम्प्रदाय का भी अपना एक महत्व पूर्ण स्थान है । इस सम्प्रदाय के प्रधान प्रवर्तक श्री निम्बार्काचार्य जी थे। इन्होंने ब्रज भूमि में गोवर्धन की तलहटी के निकट नीमगाँव को अपनी तपस्थली बनाया। वहीं देवर्षि नारद ने इन्हें दीक्षा प्रदान की। निम्बार्काचार्य जी भगवान के युगल स्वरूप श्री राधामाधव के उपासक थे। आपने सर्वप्रथम माधुर्यमय रसोपासना प्रारम्भ की। इस सम्प्रदाय में भगवान की नित्य प्रातःकालीन मंगलाआरती से लेकर शयन आरती तक की अष्टयाम सेवाओं में समयानुसार रागों का गायन होता है। निम्बार्क सम्प्रदाय के ग्रन्थों के आधार पर यह सांगीतिक परम्परा देवर्षि नारद से चली आ रही है। इस सम्प्रदाय की मुख्य गायकी ध्रुपद और धमार पर आधारित है। यहाँ दो प्रकार की गायन शैलियाँ प्रचलन में चली आ रही हैं– एकल गायन और समाज गायन । दोनों ही इस सम्प्रदाय की विशिष्ट गायन शैलियाँ हैं। इसके अलावा वाद्य–वादन की प्रथा भी प्राचीन काल से चली आ रही है। सर्वप्रथम नारद जी ने वीणा वादन करके भगवान का गुणगान किया। वह परम्परा आज भी अबाध रूप से चली आ रही है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख वाद्य मृदंग(पखावज), वीणा, सारंगी आदि हैं। वादन के साथ नृत्य और लीलानुकरण(रास) की भी अपनी परम्परा है। सम्प्रदाय के किसी विशिष्ट उत्सव पर विभिन्न प्रकार के नृत्य ढाँडी नृत्य, नरसिंह नृत्य, कहरवा नृत्य आदि का, लीलानुकरण में बसन्त रास, नित्य रास, महारास आदि का प्रचलन है। मेरे शोध पत्र का विषय 'निम्बार्क सम्प्रदाय का संगीतमय रास' है अतः यहाँ मैं रास विधा का सविस्तार वर्णन कर रहा हूँ।

रास ने निम्बार्क सम्प्रदाय की सांगीतिक विधाओं के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही अपनी विशिष्टता को बनाए रखा है। 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' शब्दकोश के अनुसार 'रास' शब्द 'रास्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जुड़कर बना है, जिसका अर्थ है, गोपों की प्राचीन काल की क्रीड़ा जिसमें वे सब मण्डल बनाकर एक साथ नाचते थे। 'आदर्श हिन्दी शब्दकोश' के अनुसार 'रास' शब्द का अर्थ *गोपानां नृत्यः क्रीड़ाभेद* अथवा नर्तक समाज अर्थात गोपों अथवा गोपिकाओं की प्राचीन काल की क्रीड़ा, जिसमें वे सब मण्डल बनाकर एक साथ मिलकर नाचते थे। 'श्री मद्भागवत पुराण' ग्रन्थ में भी कहा गया है कि रास लीला में गायन, वादन तथा नृत्य का समावेश है। डॉ0 वसन्त यामदग्नि के अनुसार, 'रास शब्द का अर्थ चिल्लाहट होता है आदिकाल से मानव अपने सुख के क्षणों में अपनी प्रसन्नता को चिल्लाहट के साथ व्यक्त करता आया है। उसकी आदिम प्रसन्नता की सूचक यह प्रकृति रास नाम से अभिहित हुई। उक्त उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि रास की सहजता अथवा स्वाभाविकता 'मण्डल परकता' है, जिसका उद्देश्य है आलौकिक एवं आध्यात्मिक रस की प्राप्ति। रास लीला के आद्य–प्रवर्तक श्री कृष्ण तथा आद्य–प्रवर्तिका ब्रज गोपांगनाएं हैं। जिसकी रसमयी लीला रसिक जनों को आलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली है। श्री लाडिली लाल की माधुर्यमयी श्रृंगारिक लीलाओं पर आधारित मण्डलाकार नृत्य का स्वरूप ही 'रास' को विशिष्ट आकार प्रदान करता है। देखा जाय तो वास्तव में 'रास' शब्द ही स्वयमेव संगीतात्मक है।

निम्बार्क सम्प्रदाय में सांस्कृतिक अभिनय का प्रमुख रूप 'रास' है । रास की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । भगवान कृष्ण के आविर्भाव काल के अनन्तर उनकी लीलाओं के आधार पर उनका अनुकरण करने की परम्परा रास के रूप में चल पड़ी, ऐसा प्रतीत होता है ।[3]

प्राचीन ग्रन्थों में रास के हल्लीसक, मण्डल नृत्य और रासक आदि भेद मिलते हैं । निम्बार्क सम्प्रदाय में रास लीला का सूत्रपात करने वाले श्री घमण्डदेव जी थे । आप निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य श्री हरिव्यासदेव जी के शिष्य थे । एक समय की बात है, श्री घमण्डदेव जी भ्रमण करते हुए ग्वालियर के निकट 'परेवा' नामक ग्राम में गए हुए थे । बड़ा ही सुन्दर कार्यक्रम चल रहा था । चारों ओर भक्ति का

साम्राज्य छाया हुआ था । आपके सत्संग के प्रभाव से भक्ति सरिता प्रवाहित हो रही थी । वहीं युगलकिशोर श्री श्यामाश्याम ने प्रसन्न होकर श्री घमण्डदेव को आदेश दिया कि लोक में मेरी लीला का प्रचार–प्रसार करो और लोगों को मेरी ओर उन्मुख करो, साथ ही मुकुट चन्द्रिका प्रदान कर आश्वासन भी दिया कि जिसके मस्तक पर इसको धारण कराओगे, उसमें मेरा आवेश हो जाएगा । उक्त कथा से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान के अन्तर्धान हो जाने के बाद भगवान के आदेशानुसार प्रथम बार रास लीला का आयोजन कराने का श्रेय निम्बार्की आचार्य श्री घमण्डदेव जी को ही है । इसी समय से रास की परम्परा इस सम्प्रदाय में अबाध रूप से चली आ रही है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्तों ने रासलीला विषयक सामग्री का आधार स्तम्भ 'श्रीमद्भागवत' नामक ग्रन्थ को बनाया । उनकी सम्पूर्ण लीलाएं संगीतात्मक और माधुर्य भाव से परिपूर्ण हैं, यही श्रीमद्भागवत की विशेषता है । निम्बार्क सम्प्रदाय के देवालयों में रास के दो रूप विद्यमान हैं – नित्यरास और महारास । श्रीमद्भागवत के रासपंचाध्यायी में शरद पूणिमा की रात्रि में श्री कृष्ण द्वारा महारास किए जाने का वर्णन मिलता है, जिसको आज भी निम्बार्क सम्प्रदाय के मन्दिरों में शरद पूर्णिमा की रात्रि को कई रासमण्डलियों को मिलाकर महारास करने की परम्परा आज भी चली आ रही है । रासलीला में श्री कृष्ण की किसी भी लीलाओं के प्रदर्शन से पूर्व नित्य रास अवश्य किया जाता है । नित्य रास के अन्तर्गत मधुर स्वर लहरियों से युक्त पद गायन के साथ–साथ नृत्य की कुछ आकर्षक भाव–भंगिमाओं का भी समावेश होता है । गोलोकधाम में निवास करने वाले श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा श्रीराधा के इच्छानुसार ही नित्य रास करते हैं । रास लीला के विधायक तत्वों में श्रीकृष्ण तथा श्रीराधारानी लाडिली लाल के रूप में रास लीला के केन्द्र हैं । रास लीला को मण्डित करने के लिए परम तत्व का एक अन्य रूप सखियों का है, जो प्रिया–प्रियतम की नित्य रसकेलि क्रीड़ा की संचालिका हैं । इसके अतिरिक्त रासलीला के विधायक तत्वों में श्री वृन्दावन धाम का विशेष स्थान है । जहाँ श्री कृष्ण तथा राधा नित्य लीलारत रहते हैं । इन चारों रूपों में एक ही परम तत्व दिव्यरूप का प्रकाश होने के कारण ये सब परस्पर अभिन्न हैं–

प्रियाशक्ति आह्लादिनी प्रिय आह्लादस्वरूप ।
तनु वृन्दावन जगमगै इच्छा सखी अनूप ।।

श्रृंगार रस एवं माधुर्य रस ही रास के केन्द्र हैं । नित्य रास के बाद लीलाओं में कभी–कभी हास्य रस का भी प्रयोग मिलता है । निम्बार्की आचार्य श्री स्वामी हरिदास जी ने रास का सांगीतिक अंग से श्रृंगार कर उसे जनसामान्य में लोकप्रिय बनाया । उन्होंने रास में शास्त्रबद्ध विशुद्ध राग–रागिनियों, नृत्य के कठिन परमूलों का प्रयोग तथा चतुर्विध वाद्यों का प्रयोग किया । श्री घमण्ड देव जी ने अपने अथक परिश्रम से ब्रज के समीपवर्ती कुछ अन्य भागों में रास का प्रचार–प्रसार किया ।

'रास' पादविक्षेप, लास्य(भ्रू संचालन, हस्तमुद्रा तथा अंगहार आदि) तथा शास्त्रीय संगीत की विभिन्न गेय विधाओं के अन्तर्गत विशेषकर ध्रुपद, धमार की गम्भीर गायन शैली में विभिन्न रागों में बद्ध भक्त्यात्मक पदों पर अभिनीत किया जाता है । शास्त्रीय संगीत की विशिष्ट गेय विधा ध्रुपद, धमार का रास में विशेष स्थान है । ध्रुपद की प्रकृति के अनुकूल ही विभिन्न रागों में पद गायन किया जाता है, जैसे– देश, भूपाली, यमन, विभास, वसन्त, भैरव, मालव, मल्हार, नटराग आदि । ध्रुपद के साथ–साथ रास में ध्रुपद के निकटतम गेय विधा धमार में भी पदों का सुमधुर गायन करने की परम्परा रही है । श्री राधाकृष्ण का होरी वर्णन धमार गायन में विशेष रूप से वर्णित होता है । इसीलिए रास में होली के पदों के गायन की विशेष महत्ता के कारण धमार गायन अत्यधिक प्रचलित रहा । फाल्गुन मास में रास लीला में किसी भी ताल में गाए जाने

वाले पद को भी 'धमार' नाम से पुकारा जााता है । इस अवसर पर श्री प्रियाप्रियतम के परस्पर होली खेलने की धूमधाम तथा गोपियों द्वारा अबीर, गुलाल आदि रंग श्री कृष्ण के ऊपर छिड़कने से नटखट कन्हैया का गोपियों को अचानक घेर लेना, इस प्रकार के अल्हड़ धूमधाम से प्रतीत होता है कि धमार के साथ पखावज वाद्य के अतिरिक्त, डफ, ढोल आदि वाद्यों का प्रयोग भी होता रहा है । रास का अधिकतर प्रारम्भ भी धमार पद गायन से किया जाता है । रास के संस्थापक एवं संरक्षक भक्त संगीतज्ञ शुद्ध भारतीय संगीत पद्धति के समर्थक होने के कारण उनकी उच्च धार्मिक परायणता तथा प्राचीन ग्रन्थों में बताए गए मूल उद्‌देश्य व उनकी कलात्मक परम्परा प्रिय दृष्टिकोण होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि इन भक्त संगीतज्ञों को अतः स्वामी हरिदास जी को रास में ध्रुपद गायक का पद प्राप्त था, जैसा कि कविवर गोपाल के अनुसार कहा गया है, *'सूर कौ पद और ध्रुपद हरिदास कौ'* यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के संगीताचार्यों ने रास संगीत को पूर्णतः शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित रखा और निम्बार्क सम्प्रदाय की सांगीतिक विरासत को सुरक्षित रखा ।

वादन के साथ–साथ रास का तीसरा अंग 'नृत्य' है, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि रास मण्डलाकार नृत्य का संकेत करता है, इसीलिए रास में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है । रास नृत्य में विभिन्न प्रकार की हस्त मुद्राओं का प्रदर्शन एवं नृत्यों का संचालन, ग्रीवा की तिरछी मुद्राएं, पाद–विन्यास, चलन–चितवन तथा मुस्कुराहट आदि आकर्षक मुद्राओं का विशेष महत्व है । इन सभी नृत्य मुद्राओं को किन्हीं नामों से परिभाषित किया गया है, जैसे– 'स्थानक'(राधा–कृष्ण के खड़े होने की स्वाभाविक मुद्रा), 'चारी'(हाथ, पैर तथा कटि आदि अंगों की एकसाथ चलनात्मक चेष्टा), 'पादचारी'(जिस ओर पैर घूमेगा स्वाभाविक रूप से पिण्डली भी उसी ओर घूमेगी), 'भ्रमरी चारी'(श्री कृष्ण का अत्यंत वेग से घुटनों द्वारा घुमावदार चक्कर लेना), 'सूचीचारी'(पैरों को जंघा के ऊपर तक ले जाकर पुनः पंजे के अग्रभाग को भूमि पर रखना), 'करण'(हस्त तथा पादों को एक साथ मिलाकर संचालित करते हुए नृत्य मुद्रा), 'अंगहार'(हस्त, कटिपाट, शिर, भ्रू, नासिका, अधर तथा कपोल आदि विभिन्न अंगों तथा प्रत्यांगों द्वारा विभिन्न नृत्य मुद्राएं), 'उरप'(हर्षोल्लासित भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नृत्य की विभिन्न क्रियाएं), 'तिरप'(नर्तक का तिरछी गति से भ्रमण करना), 'लाग'(दो अंगों को मिलाकर आकर्षक मुद्रा बनाना), 'डाट'(नर्तक द्वारा धैर्य, साहस, आत्मविश्वास, चंचलता व विद्वत्ता से भिन्न–भिन्न मुद्राओं का प्रसन्नता पूर्वक प्रदर्शन करना), 'धिलांग'(उद्‌दाम भावों को प्रकट करने के लिए नृत्यकार प्रसन्नतापूर्वक उछलकर पृथ्वी पर गिरता है), 'हस्तक'(नर्तक एक हाथ सिर से कुछ ऊपर तथा दूसरा समानान्तर फैलाया हुआ या दोनों हाथ अन्दर की ओर समानान्तर मोड़कर वक्षस्थल के कुछ निकट रखता है) आदि । यह सारी नृत्य मुद्राएं आज भी निम्बार्क सम्प्रदाय की रास मण्डलियों में परम्परागत रूप से प्रयोग होती आ रही हैं ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के रास में शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ लोक संगीत की छटा भी दिखाई देती है । रास में जहाँ ध्रुपद–धमार गेय विधा की परिपक्वता अथवा रास नृत्य में शास्त्रीय नृत्य की शुद्धता विद्यमान है, वहीं रास में लोक संगीत शैली माँझ, लावनी, रसिया, कवित्त, सवैया, दोहे आदि की विद्यमानता भी है । रास की प्रभावोत्पादकता की वृद्धि के लिए रास के समाजी पद गायन के बीच–बीच में इन माँझों का प्रयोग करते हैं, जो रास के समयानुसार विभिन्न रागों में बद्ध होती है तथा रास में नृत्य के साथ विशेष रूप से गाई जाती है । चाचा वृन्दावन दास रचित –

ठाढ़ि रहि री लाड़ गहेली में माला सुरझाऊँ ।
बेसरिनथ की गूंज जू ढीली ताहु सुविध बनाऊँ ।।

ऐंड़ी बैंड़ी चाल छाड़ि हौं सुझे चलन सिखाऊँ ।
वृन्दावन हित रूप फूल की माल रीझी मैं पाऊँ ।।

यह माँझ आज भी परम्परागत रूप से उच्च स्तर की रास मण्डलियों के स्वामियों के मधुर कण्ठ से सुनने को मिलती है । इस प्रकार परम्परागत लावनी लोक शैली एक छन्दोगीतिका है, जो आज भी परम उच्च कोटि के रास धारियों के पास सुरक्षित है –

सुखी कैसी करु में आई न कहु बस मेरो ।
बिन देखे साँवरो चंद दृगन में अँधेरो ।।

रास में लोक नृत्य के अन्तर्गत मयूर नृत्य, सामूहिक मण्डलाकार दण्डावादन नृत्य तथा झूमर नृत्य आदि का विशेष स्थान है । मयूर नृत्य श्री राधा जी की प्रसन्नता हेतु किया जाता है । इस नृत्य में श्री कृष्ण घुटनों के बल बैठे हुए छोटे–छोटे अनेक वृत्त बनाते हुए अति द्रुत गति से नृत्य करते हैं, जो रास मण्डल के वातावरण को अलौकिक व दिव्य रस से परिप्लावित कर देते हैं । दण्ड वादन नृत्य के अन्तर्गत श्री राधा–कृष्ण एवं उनकी सखियाँ अपने–अपने हाथों में छोटे–छोटे दण्ड को लेकर पगताल के अनुसार एक समान लय में दण्डों को परस्पर बजाते हुए नृत्य करते हैं । इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की भाव भंगिमाओं द्वारा पंक्ति बद्ध तथा मण्डलाकार नृत्य करते हुए शनैः शनैः नृत्य का समापन होता है । यह नृत्य अत्यंत विलम्बित लय से प्रारम्भ होता है और तत्पश्चात द्रुत लय में प्रवेश कर जाता है । जहाँ तक नए का प्रश्न है, रासधारी रासमंच पर लीला प्रसंग के अनुसार ही लय को नियन्त्रित रखते हैं । रास के पद विशेष पर क्वार तथा कार्तिक मास में लगभग डेढ़ मास तक गाए जाने की परम्परा रही है । रास में समाजी का विशेष स्थान होता है, वही रास का निर्देशक तथा व्यवस्थापक होता है । रास के प्रसंग में कड़ी को जोड़ना, दृश्य परिवर्तन करना, पद गायन द्वारा आगामी लीला के वातावरण का चित्रण करना, श्रोताओं को व्यस्त रखने के लिए कीर्तन कराना आदि । यह सब उत्तरदायित्व रास में समाजी का ही होता है ।

इस प्रकार निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय की कलाओं में रास का अपना विशिष्ट स्थान है और संगीत कला पर कृष्ण लीला का अक्षुण्ण प्रभाव रहा है ।

संदर्भ

1. 'रसो वै सः' – तैत्तरीय उपनिषद, अध्याय 2/7 एवं श्री निम्बार्क भाष्य 1/1/20
2. ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा की लेखिका डॉ0 राकेश बाला की बद्रीनाथ के शंकराचार्य से भेंटवार्ता दिनांक–15/09/1974 पृष्ठ 18 से उद्धृत है ।
3. ब्रज का इतिहास, लेखक– कृष्ण दत्त वाजपेयी, पृष्ठ संख्या– 113

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा – डॉ0 राकेश बाला सक्सेना
2. मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत – डॉ0 राकेश बाला सक्सेना
3. श्री सर्वेश्वर मासिक पत्रिका(ब्रजलीला विशेषांक) – श्री ब्रजवल्लभ शरण(सम्पादक)
4. ब्रज की रास लीला – डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल
5. ब्रज सलिला मासिक पत्रिका(संगीत विशेषांक अक्टूबर 2010–मार्च 2011)–श्री हरिमोहन मालवीय(सम्पादक) ।
6. श्री निम्बार्क सम्प्रदाय एवं श्री निम्बार्काचार्य पीठ परिचय – श्री गोविन्द दास(सम्पादक)।

———————